

हम एक ऐसे भुरभुरे समय में पहुंच गए हैं जहां हमें लगने लगा है कि ना जाने कौनसा विचार, कौनसा सवाल हमारी अस्मिता, हमारे इतिहास, हमारे संस्कार, हमारे धर्म को एक फूंक मारेगा और सब कुछ ताश के पत्तों के महल की तरह भरभरा कर ढह जाएगा। एक लोकतांत्रिक समाज के तौर पर हम कमजोर और आशंकित महसूस करने लगे हैं! क्या इसका हमारी शिक्षा से कोई रिश्ता है? क्या हमारे लोकतांत्रिक मूल्यों में क्षरण से कोई रिश्ता है? हमें इस पर कुछ विचार करने की जरूरत है।

हमें क्यों लगने लगा है कि किसी फिल्म को रिलीज होने से पहले ही रोक देना चाहिए? उसमें काम करने वाली अभिनेत्री की नाक काट देनी चाहिए, जान से मार देना चाहिए? क्यों हमें किन्हीं स्त्री-पुरुष के बीच के निजी रिश्ते में पड़ने की जरूरत महसूस होने लगी है और हम लव जेहाद जैसी चीजों के प्रति आशंकित रहने लगे हैं? एक व्यक्ति किसी किले में मृत पाया जाता है और उसके आसपास सांप्रदायिक द्वेष से भरे नारे/वाक्य लिखे हुए पाए जाते हैं या फिर एक व्यक्ति की हत्या करके उस हत्या की कार्यवाही का वीडियो बना कर सोशल मीडिया पर डाल दिया जाता है और एक समाज के तौर पर हम उसे पचा लेते हैं। किसी तरह का कोई उद्द्वेलन नहीं महसूस करते। इन स्थितियों में अपनी मूल्य संरचना में आते जा रहे बदलावों पर हमें ठहर कर जरा विचार करना चाहिए और सोचना चाहिए कि क्या हम सही दिशा में आगे बढ़ रहे हैं? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था ठीक काम कर रही है, अपनी जिम्मेदारी ठीक से निभा रही है?

लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा की भूमिका समालोचनात्मक समझ विकसित करते हुए विवेकशील नागरिक विकास के लक्ष्य की ओर बढ़ने की होती है। शिक्षा से उम्मीद की जाती है कि वह यथास्थितिवाद की पोषक न होकर बदलावकारी भूमिका का निर्वाह करेगी। चुपचाप चीजों को स्वीकार कर लेने की जगह नागरिक में प्रश्नाकुलता विकसित करेगी, विचारों की अभिव्यक्ति की व अपने कर्म को मूर्त रूप दे पाने की काबिलियत विकसित करेगी।

सवाल है कि शिक्षा में यह बदलावकारी भूमिका पैदा कैसे हो सकती है? यह तभी पैदा हो सकती है जब वह इसके लिए अभीष्ट कुछ शर्तों को पूरा करे, इन्हें हम इस प्रकार चिह्नित कर सकते हैं -

1. कोई भी शिक्षा व्यवस्था तभी बदलावकारी भूमिका अपना सकती है जब वह स्वायत्त हो।
2. शिक्षा व्यवस्था स्वायत्त तभी हो सकती है जब वह सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था हो। क्योंकि स्वायत्तता ऐसी अवधारणा जिसमें जिम्मेदारी या उत्तरदायित्व अंतर्निहित है और केवल सार्वजनिक शिक्षा ही जनता के प्रति उत्तरदायी हो सकती है। निजी शैक्षणिक संस्थान अपने मालिकों के प्रति, उनके फायदों के प्रति उत्तरदायी हो सकते हैं न कि जनता के प्रति।
3. शिक्षा संस्थान सामाजिक स्तरीकरण का पुनरुत्पादन न करें बल्कि लिंग, जाति, वर्ग, नस्ल आदि आधारों पर किसी तरह का भेद न करते हुए बराबरी का व्यवहार करे। यह तभी संभव है जब सभी लिंग, जाति, वर्ग, नस्ल आदि को उनमें प्रतिनिधित्व मिले। यह सार्वजनिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है। और तभी संभव है जब सबके लिए समान शिक्षा प्रणाली लागू हो। वरना विभिन्न तरह के स्कूल अपने-आपमें स्तरीकरण के कारण बन जाते हैं।
4. सिर्फ और सिर्फ समझ आधारित या विषय क्षेत्रों का शिक्षण स्थल बनने से शिक्षण संस्थानों को बचाया जाए। उनमें श्रम, दस्तकारी, कौशल आधारित काम, कला, संगीत आदि के लिए भी बराबरी की जगह बनाई जाए। हमारे देश में मौजूद श्रम आधारित गैर बराबरी को दूर करने व सौंदर्य बोध विकसित करने में इसकी अहम भूमिका होगी साथ ही इनसे उपजे अनुभवों का उपयोग विषय क्षेत्रों में बेहतर समझ विकसित करने में मददगार होंगे। उदाहरण के लिए- बच्चे द्वारा बनाई गई रंगोली उसे ज्यामिती की बेहतर

समझ विकसित करने में तो मदद करेगी ही, उसे बनाने में लगने वाले श्रम के मूल्य को पहचानने में भी मदद करेगी, रंगों के प्रति उसकी समझ विकसित करेगी।

5. शिक्षा व्यवस्था समालोचनात्मक विवेक को विकसित करने वाली हो। इसके लिए जरूरी है कि विमर्श या चर्चा शिक्षा शुरू होने के पहले दिन से ही केन्द्र में हो। इसके लिए पढ़ना-लिखना सीखने तक इंतजार करने की जरूरत नहीं है। मौखिक स्तर पर पहले दिन से इसे शामिल करने की जरूरत है। स्कूल के शुरुआती दिनों से ही ऐसा कोई वक्त ना गुजरे जब अनुभवों, अवलोकनों पर सवाल ना उठाए जा रहे हों। ऐसी कोई विषयवस्तु ना हो जो प्रश्न से परे हो। ऐसी कोई सत्ता- धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक किसी भी तरह की सत्ता - ना हो जो सवालों से परे हो। और यह ऐसा लक्ष्य है जिसे केवल और केवल सार्वजनिक शिक्षा में ही संभव किया जा सकता है। क्योंकि लोकतंत्र में सवाल उठाना सार्वजनिक स्थल पर ही संभव है।
6. कार्य-कारण संबंध, विवेचना, विश्लेषण आदि के जरिए समझ को धार देने का काम किया जाए। यह तभी संभव है जब शिक्षार्थी की काबिलियत में भरोसा करें उसे अपना ज्ञान अपने अनुभव के आधार पर गढ़ने दें न कि बाहर से कुछ थोपें।
7. शिक्षा ऐसी हो जो कल्पना को पंख दे। इसके लिए जरूरी है कि वह समयबद्ध कक्षा की अवधारणा से मुक्त हो। उसमें ठहरकर देखने, महसूस करने और अपनी कल्पना करने के लिए अवकाश हो और इसके बावजूद एक प्रगति की ओर अग्रसर निरंतरता हो। इसका आशय यह नहीं है कि समय अनन्त होगा बल्कि वह इतना रूढ़ नहीं होगा, जितना आज कक्षा के रूप में है। हम प्राथमिक, आरंभिक और माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के लिए मोटा-मोटा समय तय कर सकते हैं और उसमें थोड़ी मोहलत दे सकते हैं। बीच का जो समय है उसे कक्षा के रूप में पैदा हुई समय की जड़ता से मुक्त रख सकते हैं। इस तरह बच्चों को अपनी गति से सीखते हुए आगे बढ़ने का मौका मिलेगा और शिक्षा के परीक्षा केन्द्रित विचार से मुक्ति मिलेगी। बच्चे के आगे बढ़ने का आधार उसका सीखना होगा न कि कक्षा में बिताया गया समय। इस सीखने का आकलन करने के लिए सतत और समग्र आकलन व्यवस्था की जरूरत होगी। इस तरह आकलन सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का ही एक भाग होगा ना कि निरपेक्ष व वस्तुनिष्ठ किस्म की कोई परीक्षा प्रणाली।

जाहिर है यह शिक्षा की एक बहुत ही मोटी सी रूपरेखा है इसके आगे और बारीक हिस्से होंगे। जिनमें स्कूल में समूहों में चलने वाले विभिन्न कामों, अध्ययन आदि के तौर-तरीके के बारे में विस्तार होगा साथ ही शिक्षक तैयार करने की पूरी एक संरचना जुड़ी होगी और उसके बारे में विस्तार होगा। यह कहने में जितना आसान है करने में उतना आसान नहीं होगा। इसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति की जरूरत होगी। और यह इच्छाशक्ति राजनैतिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर चाहिए होगी। संसाधनों की जरूरत होगी। जब यह अपना आकार ग्रहण करेगी तो एक दर्द होगा क्योंकि यह यथा स्थिति को चुनौती देगी। लोग सवाल करेंगे, अपनी परिस्थिति के कारणों को समझ रहे होंगे, उन्हें दूर करने के रास्तों पर विचार कर रहे होंगे। जिससे बहुत सी सत्ताएं ढहेंगी, सवालों के घेरे में आएंगी। बहुत से स्तरीकरण ढहेंगे। कुछ लोगों की हैसियत कम होगी और समाज बराबरी की ओर गति करेगा। कुछ ही समूहों, जातियों, वर्गों तक सीमित सामाजिक गतिशीलता का दायरा बढ़ेगा। किन्तु इस दर्द का परिणाम एक उदार, प्रगतिगामी हर चीज पर सवाल उठाने वाले व उठाने देने वाले तथा हर तरह के विचारों को अभिव्यक्त करने वाले व करने देने वाले समाज के रूप में सामने आएगा।

हम कुछ समय के लिए सवालों को उठने से, विचारों को व्यक्त होने से रोक तो सकते हैं किन्तु उन्हें खत्म नहीं कर सकते। इसका एक ही रास्ता है कि सवालों को उठने व विचारों को व्यक्त होने की जगह बनाई जाए। उनके प्रति एक खुला नज़रिया विकसित किया जाए। ♦

प्रमोद